International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

राष्ट्रीय एकता और हिन्दी

डॉ. पोरिका नागमणी

सहायक अद्यापिका (हिन्दी विभाग), शास्क्रीया स्नातक महाविध्यालय मुलुगु, मुलुगु जिला (506343) (T.S)

भाषा मानव के व्यवहार एवं प्रवृत्ति का मुख्य साधन है , मनुष्य के समस्त क्रियाकलाप एवं जाचरण भाषा के माध्यम से ही संपन्न होते हैं। मनुष्य और मनुष्य बीच ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं। के

देश की एकता के लिए एक भाषा का होना जितना आवश्यक है उससे अधिक आवश्यक है देश भर के लोगों में देश के प्रति विशुद्ध प्रेम तथा अपनापन होना अगर आज हिन्दी भाषा मान ली गई है , तो इसलिए नहीं कि वह किसी प्रांत विशेष की भाषा है , बल्कि इसलिए कि वह अपनी सरलता , व्यापकता तथा क्षमता के कारण सारे देश को भाषा हो सकती है और सारे देश के लोग उसे अपना सकते हैं ।

आधुनिक हिन्दी के निर्माता भारतेन्दु वायू हरिश्चन्द्र की भाषा के संबंध में लिखी गई ये पंक्तियाँ आज के दिन हमारे लिए एक अभूतपूर्व प्रेरणा का संदेश दे रही हैं।

निज भाषा उन्नति अहे. सब उन्नति के मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न तन को मूल ॥

यसे यद्यपि हमारे देश के विभिन्न भागों में अनेक भाषाएँ बोली जाती है, फिर भी हिन्दी हमारे देश की ऐसी भाषा है, जो प्रायः सारे देश में समान रूप से व्यवहार में लाई जाती है। उसके इस व्यापक रूप को समझते हुए ही सारे देश ने इसे 'राष्ट्रभाषा के पावन अभियान से अभिषिक्त किया है। इस संबंध में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने देशवासियों को उद्बोधित करते हुए एक बार यह ठीक ही कहा था।

जैसे अंग्रेज अपनी मातृभाषा अंग्रेजी में बोलते हैं और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप हिन्दी को भारतमाता की एक भाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए ।

गाँधी जी ने ही हिन्दी को राष्ट्र की उन्नति का मूल समझकर यह घोषणा नहीं की थी. प्रत्युत उनसे पूर्व भी देश के सभी अंचलों के समाज सुधारकों , संतों और नेताओं ने इसके महत्व को समझ लिया था। महाराष्ट्र में जहाँ ग्यारहवीं तथा बारहवी शताब्दी में मराठी के आदि-कवि मुकुंदराज और संत ज्ञानेश्वर ने इसके महत्व को समझा था वहाँ कालांतर में गोपाल नरहरि देशपांडे तथा केशव वामन पेठे नामक महानभावों ने क्रमशः सन् 1875 तथा 1876 में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का अभिनंदनीय प्रयास किया था।

हिन्दी को यह महत्व इसलिए नहीं दिया गया था कि वह सारी भारतीय भाषाओं में ऊँची है , बल्कि उसे राष्ट्रभाषा' इसलिए कहा और समझा जाता है कि हिन्दी को जानने , समझने और बोलने वाले देश के कोने-कोने में फैले हुए हैं। ये लोग चाहे हिन्दी न जानते हों , व्याकरण को भूला करते हों, अशुद्ध हिन्दी बोलते हो; परंतु बोलते हिन्दी ही है और उसी में अपने भाव व्यक्त करते एवं दूसरों की बात समझते हैं। वास्तव में हिन्दी की यह प्रकृति ही देश की एकता की परिचायक है और इस प्रकृति ने ही उसे इतना व्यापक रूप दिया है। वह केवल हिन्दुओं या कुछ मुट्ठी भर लोगों की भाषा नहीं है, वह तो देश के कोटि-कोटि कंठों की पुकार और उनका हृदयहार है ।

हिन्दी के सूत्र के सहारे कोई भी व्यक्ति देश के एक कोने से चलकर दूसरे कोने तक जा सकता है और अपना काम चला सकता है। देश में फैली हुई अनेक भाषाओं और संस्कृतियों के बीच यदि भारतीय जीवन की उदात्ता एवं एकात्मकता किसी एक भाषा में दिखाई देती है तो वह हिन्दी में ही है। चाहे सब लोग हिन्दी न जानते हो, लेकिन फिर भी इसके द्वारा वे अपना कम चला लेते हैं और उन्हें इसमें कोई कठिनाई नहीं होती। भारत की बहुभाषिकता के प्रश्न को उठाकर जो लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गौरवपूर्ण स्थान पर अधिष्ठित करने में रुकावट डाल रहे हैं, वे यह कैसे भूल जाते हैं कि आज विश्व के सर्वाधिक शक्ति संपन्न देश रूस ने इस समस्या का किस प्रकार समाधान किया है। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि सोवियत संघ में यद्यपि 66 भाषाएँ बोली तथा लिखी जाती हैं, किन्तु फिर भी वहाँ की राष्ट्रभाषा रूसी ही है। सोवियत संघ की मंगोल और तुर्की भाषाओं के शब्दों का रूसी भाषा से कोई संबंध नहीं है। इसके विपरित यहाँ की दक्षिण की भाषाओं के प्रायः 60 प्रतिशत शब्द मिल जाते हैं। तमिल को हम अपवाद के रूप में रख सकते हैं, किन्तु उसमें भी कुछ शब्द तो ऐसे मिल जी जाते हैं, जिन्हें भारत की दूसरी भाषाओं के बोलने वाले सरलता से समझ लेते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व हिन्दी के ही माध्यम से भारत के अनेक संतों , सुधारकों, मनीषियों और नेताओं ने अपने विचारों का प्रसार एवं प्रचार किया था। अपनी दूरदर्शिता के कारण उन्होंने ऐसी ही भाषा को अपनी भाव-धारा के प्रचार का साधन बनाया था , जो देश के सभी भूभागों के अधिकांश जनसमुदाय को एकता के सूत्र में पिरो सकती थी , और वह भाषा हिन्दी थी। यही कारण था कि जहाँ उत्तर प्रदेश के कबीर, पंजाब के नानक सिंध के सचल , कश्मीर के लल्लाद, बंगाल के बाउल, असम के शंकरदेव आदि संतों ने जिस सांस्कृतिक एकता तो आधार बनाकर अपने काव्य की रचना की थी, वहाँ दक्षिण के बेमना आलवार आदि संतों की कविता की मूल भावभूमि भी वही थी। इनके संदेश में कहीं भी वापागत विघटन का स्वर नहीं उभरा था, बल्कि सभी की रचनाएँ उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक समान रूप से समाप्त होती थी। जिन साधु -वैरागियों के मठ और अखाड़े सारे देश में फैले हुए थे , उनमें कहीं भी भाषा का झगड़ा नहीं उठता था।

इसी में उन्होंने अपना संदेश देश को दिया था और उसे वे एकता की कड़ी के रूप में देखते थे। भाषा वही महत्वपूर्ण होती है जो लोगों को 'तोड़ने के बजाय 'जोड़ने का संदेश दे और जिसको माध्यम से प्रेम का मार्ग प्रशस्त हो। इसी पावन भावना से प्रेरित होकर महाकवि जायसी ने यह कहा था।

तूरकी, अरबी, हिन्दुई, भाषा जेती आहि ।
जेहि मँह मारग प्रेम का, सर्व सराहे ताहि ।।

यह प्रेम का मार्ग केवल हिन्दी के माध्यम से प्रशस्त हो सकता है। यदि ऐसा न होता तो बंगाल के अद्वितीय सुधारक राजा राममोहन राव और केशवचन्द्र सेन जैसे मनीषी अपने विचारों के प्रचार के लिए इसे क्यों अपनाते ? आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने गुजराती होते हुए भी राष्ट्रीयता और समाज- सुधार की अपनी भाव-धारा को हिन्दी के द्वारा ही सारे देश में फैलाया ।

हिन्दी के सार्वजनिक उपयोगिता और महत्ता का इसी से पता चलता है कि इसे दूसरे प्रदेशों के निवासी नेताओं और विचारकों ने अपने विचारों के प्रकट करने का माध्यम बनाया था। आज दक्षिण के चारों राज्यों में हिन्दी का जो सफल लेखन, पटन और अध्यापन हो रहा है उसमें भी राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा स्थापित 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ' जैसी अनेक संस्थाओं का अत्यधिक योगदान है। इसी प्रकार उड़ीसा , असम तथा मेघालय में भी हिन्दी का व्यापक

प्रचार तथा प्रसार परिलक्षित होता है । विभाजन के उपरांत देश के विभिन्न अंचलों में फैले हुए सिंधी भाई भी किसी से पीछे नहीं है। आज के हिन्दी के लेखन में भारत के सभी भाषाभाषियों का उल्लेखनीय योगदान है । श्रीमती सोरोजिनी नायडू ने हिन्दी की महत्ता को स्वीकार करते हुए एक बार कहा था

"देश के सबसे ज्यादा हिस्से में हिन्दी ही लिखी जाती है। अगर हम साधारण बुद्धि से काम ले तभी हमें पता चलेगा कि हमारी कौमी जवान हिन्दी ही हो सकती है। सुप्रसिद्ध मनीषी आचार्य क्षितिमोहन सेन ने भाषा को किसी भी देश की एकता का प्रधानल साधन मानते हुए हिन्दी की महत्ता की जो प्रतिष्ठापना की थी वह हमारे लिए अपेक्षणीय नहीं है । उन्होंने कहा था 'अंग्रेजी भाषा की महिमा इसलिए नहीं है कि यह हमारे शासकों की भाषा थी , बल्कि इसलिए है कि उसने संसार की समस्त विद्याओं को आत्मसात किया है। हिन्दी को भी यह पद पाना है। उसे भी नाना विद्याओं , कलाओं और संस्कृतियों की त्रिवेणी बनना होगा। हिन्दी में वह क्षमता है। बिना ऐसा बने भाषी की साधना अधूरी रह जाएगी। भाषा हमारे लिए साधन है, साध्य नहीं मार्ग है, गंतव्य नहीं, आधार है आधेय नहीं ।"

अनेक बंग नेताओं द्वारा जहाँ राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में योगदान की दिशा में ऐसे महत्वपूर्ण कार्य हो रहे थे, वहाँ जस्टिस शारदाचरण मित्र ने एक लिपि विस्तार परिषद् की स्थापना करके उसके द्वारा देवनगर' नामक ऐसा पत्र प्रकाशित किया था कि जिसका उद्देश्य देवनागरी लिपि के माध्यम से समस्त भारतीय भाषाओं की कृतियों को प्रकाशित करके उनमें समन्वय स्थापित करता था। उनकी यह भी अभिमत था कि यदि भाषाओं में से लिपि की दीवार को हटा दिया जाए और सब भाषाओं को 'देवनागरी लिपि में ही लिखने की परंपरा चल पड़े , तो भारत की एकता अखंड रह सकेगी। वास्तव में यदि लिपि की बाधा को दूर कर दिया जाए और सारे देश की भाषाएँ 'देवनागरी को अपना ले तो हमारी सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक चेतना को बड़ा बल मिल सकेगा।

अब वह समय आ गया है कि जब समस्त भारतीय भाषाएँ मुक्त स्वर से जहाँ एद हृदय हो भारत जननी का पावन उद्घोष करेंगी, वहाँ राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त की यह भावना देश की एकता के लिए सत्य सिद्ध होकर ही रहेगी:

हिन्दी का उद्देश्य यही है,
भारत एक रहे अविभाज्य ।
यों तो रूस और अमेरीका
जितना है उसका जन-राज्य ॥